अघाती कर्म

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

जीव की शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक शुभाशुभ क्रिया द्वारा या मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय एवं योग इन आश्रवों से अनुगत आत्मा द्वारा जो किया जाता है वह कर्म है। मुख्यतः कर्म का अर्थ प्रवृत्ति है। कर्म से आकृष्ट पुद्गल भी कर्म कहलाते हैं। आत्मा और कर्म का संबंध क्रिया के द्वारा होता है। जब तक आत्मा में राग–द्वेष जनित प्रकम्पन विद्यमान हैं, तब तक उसका कर्म परमाणुओं के साथ संबंध होता रहता है। कर्म को उपाधि कहा गया है। उपाधि शब्द दुःख, पीड़ा और बंधन के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जब कर्म आत्मा के साथ बंधते हैं तो उनका फल भी भुगतना पड़ता है। अपना किया हुआ कर्म अपने को भुगतना पड़ता है। भावकर्म और द्रव्यकर्म के रूप में कर्म दो प्रकार के हैं– रागद्वेषात्मक परिणाम अर्थात् कषाय भाव कर्म है। कार्मण जाति का पुद्गल जो कषाय के कारण आत्मा के साथ मिल जाता है उसे द्रव्य कर्म कहते हैं। कर्म जो पुद्गल का ही एक विशेष रूप है, आत्मा से भिन्न एक विजातीय तत्व है। जब तक आत्मा के साथ इस विजातीय तत्व का संयोग है तभी तक संसार है। इस संयोग के नष्ट होने पर आत्मा मुक्त हो जाता है।

कर्म की आठ मूल प्रकृतियां हैं। इन मूल प्रकृतियों को घाती और अघाती दो भागों में बांटा गया है। घाती कर्म वे कर्म हैं, जो आत्मा के सहज गुणों का घात करते हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय घाती कर्म कहलाते हैं। घाती कर्मों को सर्वघाती और देशघाती दो भागों में विभक्त किया गया है। सर्वघाती आत्मा के स्वाभाविक गुणों को पूरी तरह नष्ट कर देते हैं और देश घाती आत्मा के आंशिक गुणों का घात करते हैं। जैसे बादल, चन्द्रमा और सूर्य के स्वाभाविक प्रभाव को ढ़ककर उनके प्रकाश को बाहर नहीं आने देता उसी प्रकार घाती कर्म आत्मा के स्वाभाविक गुणों को प्रकट नहीं होने देते।

जो कर्म आत्मा के मुख्य या स्वाभाविक गुणों का घात नहीं कर पाते, वे अघातिकर्म कहलाते हैं। आत्मा के गुण आठ हैं– अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य, अटल अवगाहन, अमूर्तिकपन, अगुरुलघुपन और लब्धि। कर्म पुद्गल आत्मा के इन गुणों को प्रगट नहीं होने देते। इसलिए आत्मा का स्वाभाविक रूप प्रगट नहीं हो पाता। वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र ये चार अघातिकर्म हैं। जिन कर्मों के प्रभाव से आत्मा निजानन्द को भूलकर सांसारिक सुख–दुःख रूप फलों का अनुभव करता है, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। वेदनीय कर्म दो प्रकार के हैं– सात वेदनीय और असातवेदनीय। वेदनीय कर्म मधुलिप्त तलवार की धार के समान है। जिस प्रकार मधु से लिप्त तलवार की धार को चाटने से स्वाद मालुम पड़ता है, उसके समान सातवेदनीय है और जीभ कट जाती है, उसके समान असातवेदनीय है।

आयुष्य कर्म के द्वारा आत्मा चारों गतियों में– नैरयिक, तिर्यक्, मनुष्य और देव गतियों में भ्रमण करता रहता है। आयुष्यकर्म बेड़ी के समान है। जिस प्रकार काठ की बेड़ी में पड़ा हुआ मनुष्य उसको तोड़े बिना निकल नहीं सकता, वैसे ही आयुष्यकर्म को भोगे बिना जीव एक भव से दूसरे भव में नहीं जा सकता। जिसके प्रभाव से जीव शुभ या अशुभ शरीर की रचना, प्रभाव आदि प्राप्त करता है, उसे नामकर्म कहते हैं। इसके मुख्य दो प्रकार हैं– शुभ और अशुभ। शुभ नाम के उदय से व्यक्ति सुन्दर, आदेय वचन, यशस्वी और प्रभावशाली व्यक्तित्व वाला होता है और अशुभनाम के उदय से इसके विपरीत होता है। जिस कर्म के द्वारा जाति, कुल आदि की उच्चता, निम्नता होती है, उसे गोत्र कर्म कहते हैं। गोत्र कर्म दो प्रकार का है– उच्च गोत्र और निम्न गोत्र। ये क्रमशः उच्चता–निम्नता, सम्मान और असम्मान के निमित्त बनते हैं।

जीव और कर्म का संबंध अनादि है। जीव चेतन है और कर्म अचेतन। इन दोनों में सीधा संबंध नहीं है। जीव अपनी प्रवृत्ति से ही पुद्गल का आकर्षण करता है। जब वह शुभ प्रवृत्ति में संलग्न रहता है, तब शुभ पुद्गल आत्मीकृत होते हैं, जो पुण्य कहलाते हैं। जब वह अशुभ प्रवृत्ति में संलग्न रहता है, तब अशुभ पुद्गल आत्मीकृत होते हैं, जो पाप कहलाते हैं। आत्मा प्रमत्त दशा में अपने अशुभ उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार तथा पराकर्म से कर्म प्रायोग्य पुद्गलों को ग्रहण कर कर्मों से बद्ध हो जाता है। आत्मा ही कर्मों का कर्त्ता और आत्मा ही कर्मों का विकर्त्ता है। इसलिए बंध और मोक्ष आत्मकृर्तृत्व सम्मत है।

जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार फल भोगने के लिए विभिन्न लोकों में गमन करता हुआ अनेक शरीरों को बार–बार धारण करता है। जीवात्मा का यह आवागमन इसलिए होता है कि उसके द्वारा किये हुए कर्मों के संस्कारों से मन, बुद्धि, इन्द्रिय, पंचभूत इनके समुदाय शरीर के धर्मों से युक्त होने के कारण अहंता, ममता आदि गुणों के वशीभूत होकर अनेकानेक शरीर धारण करता है। जीव अपने कर्मानुसार विभिन्न योनियों में जन्म लेता है। जन्म लेने में जीव स्वतंत्र नहीं है। संकल्प और कर्मों के अनुसार अनेक योनियों में उसका संबंध जोड़ने वाला एक व्यवस्थित शक्ति है। यही व्यवस्थित शक्ति कर्मफल का नियामक है। कर्म और पुनर्जन्म का गहरा संबंध है। मनुष्य खेती की तरह पकता है, अर्थात् जीर्ण होकर मर जाता है तथा मरकर पुनः जन्मग्रहण करता है। आत्मा वर्तमान शरीर को छोड़ने से पहले अपने भावी शरीर को खोज लेता है। अघाती कर्म इसमे सहायक होता है।